Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 4 | (October - December 2026)

'छप्पर' उपन्यास में रोगजार की समस्या

डॉ. सुभाष चंद्र
सह आचार्य, हिन्दी,राजकीय महाविद्यालय किश्तवाड़, जम्मू एंड कश्मीर. पिन कोड: 182204

सारांश

रोज़गार समाज में एक गंभीर समस्या रही है, विशेषकर दलित समाज भी इससे बहुत प्रभावित हुआ है। उनके पास अपना कोई भी उत्पादन का साधन नहीं रहा, इसी कारण वे रोज़गार के लिए दूसरों पर निर्भर रहे हैं। जय प्रकाश कर्दम द्वारा रचित छप्पर उपन्यास में सुक्खा और उसकी पत्नी रमिया साधारण माता-पिता की तरह अपने बच्चे चंदन के रोज़गार के लिए चिंतित हैं। इस उपन्यास में रोज़गार की समस्या एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आती है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज के वंचित और श्रमिक वर्ग के जीवन-संघर्ष, गरीबी, बेरोज़गारी तथा आर्थिक असमानता का चित्रण किया है। रोज़गार के सीमित अवसरों के कारण गरीब वर्ग को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बेरोज़गारी के कारण व्यक्ति की आर्थिक स्थिति कमज़ोर होती है तथा उसके परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन-स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपन्यास में सामाजिक भेदभाव और आर्थिक शोषण जैसी समस्याएं भी रोज़गार के अवसरों को प्रभावित करती हैं। रोज़गार की कमी के कारण युवाओं में निराशा और असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार छप्पर उपन्यास रोज़गार की समस्या के माध्यम से समाज में व्याप्त असमानता और शोषण को उजागर करता है तथा समान अवसरों, शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता की आवश्यकता पर बल देता है।

बीज शब्द: आर्थिक, अशिक्षित, पूंजीपतियों, बेलदारी, अप्रशिक्षित, कमरतोड़.

शोध आलेख

सदियों से धन संपदा और उत्पादन के साधनों पर सवर्ण जातियों का अधिकार रहा है, दलित इन जातियों के खेतों में, मिलों में, कारखानों में काम करके जीवन यापन करते आ रहे हैं, उनके पास अपना कोई भी उत्पादन का साधन नहीं रहा, इसी कारण वे रोज़गार के लिए सवर्णों पर निर्भर रहे और रोज़गार का अभाव रहा है। इस अभाव के कारण भी दलित भूखमरी से जूझता रहा। जय प्रकाश कर्दम द्वारा रचित छप्पर उपन्यास में सुक्खा और उसकी पत्नी रमिया साधारण माता-पिता की तरह अपने बच्चे चंदन के रोजगार के लिए चिंतित हैं। अशिक्षित ग्रामीण लोगों के सोचने का दायरा भी छोटा होता है, रमिया सोचती है कि चंदन अब बड़ा हो गया है, अब उसे आय के साधन जुटाने की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि उसके घर-परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है और उसके पिता सुक्खा रोगों से ग्रस्त भी रहते हैं। रमिया सोचती है कि चंदन का छोटा-मोटा रोज़गार उसके घर की आर्थिक स्थिति में सुधार लाकर, पिता की दवाइयों का खर्च तथा ऋण का भार उतारने में सक्षम हो गया है। परंतु सुक्खा चंदन की पढ़ाई के महत्व को समझता है। वह जानता है कि चंदन डॉक्टर बनना चाहता है, जबकि उसकी पत्नी रमिया को पता ही नहीं कि डॉक्टर क्या होता है। "वह कहता है डॉक्टरी करेगा ××× रमिया की समझ में कुछ नहीं आया डॉक्टरी के बारे में। उसने जानना चाहा ये डॉक्टरी क्या होती है, अभी कितने दिन और लगेंगे उसे डॉक्टरी करने में"[1]

स्पष्ट है कि चंदन डॉक्टर बनने का स्वप्न ले रहा है जबकि उसके निर्धन और अशिक्षित माता-पिता के लिए ऐसा पद मात्र सपना है। माता-पिता तो उसकी नौकरी के लिए अधिक चिंतित रहते हैं। अशिक्षित रमिया का तो विचार है कि

चंदन ने पर्याप्त शिक्षा ग्रहण कर ली है, अब उसे आगे पढ़ने की आवश्यकता नहीं, इसी कारण रमिया अपने पति सुक्खा से कहती है - "ए जी, मैं कहती हूं चंदन के बापू, अब तो काफी पढ़ लिख गया है चंदन। क्यों नहीं तुम उसे लिखवा भेजते कि वह हिल्लारूज़गार ढूँढ ले। दो पैसे कमाएगा तो तुम्हारी दवा दारू भी हो सकेगी और सिर से कर्ज़ भी उतरेगा"[2]

सुक्खा पत्नी को समझाता रहता है कि चंदन उनके घर का चिराग है, वह अपने उद्देश्य तक पहुंचने में अवश्य सफल होगा। उसकी शिक्षा को बीच में न छुड़वाएँ, यही उनका कर्तव्य बनता है। परंतु रमिया दलित निर्धनों के जीवन के यथार्थ को समझती है, उनका कथन है कि- "और आगे पढ़कर कौनसा कलट्टर बन जाएगा, बड़े आदमी जाते हैं बड़े होदे तक। छोटे आदमी की क्या बिसात, गुजारे लायक हिल्ले-रूजगार मिल जाए छोटा मोटा बस बहोत है"[3]

स्पष्ट है कि दलितों की यह धारणा बन चुकी है कि बड़ी पोस्ट पर केवल सवर्ण अथवा बड़े लोग ही पहुंचते हैं। चंदन की माता उसे अधिक शिक्षा ग्रहण करवाना ठीक नहीं मानती, क्योंकि दलित चंदन को कौन सी बड़ी पोस्ट पर पहुंचना है। रमिया का विचार है कि यदि उसको छोटी-सी नौकरी मिल जाती तो घर के छोटे-मोटे खर्चे निकल जाते, उच्च शिक्षा ग्रहण करके उच्च पद प्राप्त करना उन दलितों के बस की बात नहीं। उधर उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहा चंदन लगनशील छात्र है। वह शहर में झोपड़पट्टी में रहता है और वहां दलितों के रोजगार के अनेक रूप देखता है– "इनमें से कुछ मिल-मजदूरी अथवा बेलदारी का काम करते हैं, कुछ लोग फल, सब्जी, छोटी मोटी घरेलू चीजों, खेल-खिलौनों को चार पहियों की ठेली पर रखकर या सिर पर टोकरी रखे गली-गली फेरे लगाने का काम करते हैं। कुछ लोग जूते चप्पल आदि बनाने का काम करते हैं, तथा कुछ कागज के लिफाफे एवं मिट्टी के खिलौने या चटाई आदि बनाकर बाजार में बेच आते हैं"[4]

यहां लेखक ने शहरों में दलितों के जीवन यापन और रोज़गार के साधनों पर प्रकाश डाला है और स्पष्ट किया है कि दलितों के आय के साधन फेरी, फल-सब्जी की दुकान, मिल मज़दूरी और बेलदारी आदि हैं। इनमें से कुछ खेल-खिलौने और फल-सब्जी बेचकर आजीविका कमाते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ जूते, चप्पल, कागज के लिफाफे, मिट्टी के खिलौने बाजार में बेचकर अपना जीवन यापन करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पेट की आग को बुझाने के लिए दलित हर प्रकार का छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच कार्य करने के लिए तैयार रहते हैं। ऐसा करना उनकी विवशता है, विशेषकर शहरों में तो वे बेसहारा ही हैं। उन्हें इस प्रकार के साधनों के अतिरिक्त अन्य कोई साधन दिखाई नहीं देते। शहरों, नगरों में तो दलित समाज को धनी वर्ग के मालिकों के शोषण और अत्याचार का शिकार नहीं होना पड़ता है, वहां पर दलितों को ठहरने का ठौर नहीं ताकि निश्चिंत होकर रोज़गार का साधन जुटा सकें, कई बार तो काम न मिलने के कारण वे कम दिहाड़ी पर भी काम करते हैं और मालिक की गाली-गलौज सहन करते हैं- "ज्यादा दिहाड़ी की बात करें भी कैसे, क्या पता कल को उससे भी हाथ धोना पड़ जाए । ऊपर से मालिक की गालियाँ, साले चले आते हैं नखरा दिखाने, लीडर बनते हैं हरामजादे"[5]

स्पष्ट है कि नगरों, शहरों में दलितों के लिए रोज़गार की समस्या दलितों के लिए अधिक गंभीर है। मिलों, कारखानों में उन्हें काम नहीं मिलता क्योंकि वे प्रशिक्षित नहीं हैं, और अप्रशिक्षित मजदूर को दिहाड़ी कम मिलती है। इस गंभीर समस्या को हल करना उनके बस की बात नहीं। अतः उन्हें मालिकों की उल्टी-सीधी बातें सुननी ही पड़ती हैं। कहने का अभिप्राय है कि गांवों में जमींदार सवर्ण और नगरों में पूंजीपति सवर्ण समाज दलितों का शोषण करता है। वह उनके प्रति हमदर्दी से पेश नहीं आता, बल्कि जीवन के प्रत्येक कदम पर वह उनका शोषण करता है और उन्हें

अपमानित करता है। दलितों का तो जीवन ही मानो उनके घरों, खेत-खलियानों और मिलों-कारखानों में काम करने और उनकी गाली-गलौज को सहन करने के लिए बना है।

सवर्ण उन्हें बात-बात पर अपमानित, लांछित, तिरस्कृत और बेइज़्ज़त करते हैं। उनके साथ अन्याय करते हैं, क्योंकि दलितों के पास उत्पादन के साधन नहीं, खेती के लिए अपनी जमीन नहीं, उत्पादन के लिए अपनी मिलें, कारखाने नहीं। उन्हें उच्च सवर्ण जातियों के धनाढ्य वर्ग पर निर्भर रहना पड़ता है, जो अपने स्वार्थ के लिए उनका अत्यधिक अमानवीय शोषण करते हैं। उपन्यासकार जय प्रकाश कर्दम दलितों की दिनचर्या के विषय में लिखते हैं- "सुबह से शाम तक जी-तोड़ मेहनत से काम करना, रात को रूख-सूखा जो मिल जाए खा पीकर पड़े रहना और अगली सुबह उठकर फिर रोजी-रोटी की जुगाड़ में उलझ जाना, इसी में इनके जीवन की सारी गति समा गई है"[6]

स्पष्ट है कि दलित रोजी-रोटी की तलाश में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं, परंतु प्रातः से सायंकाल तक उनके कठिन परिश्रम करने के बावजूद वे केवल दो जून की रोटी ही कमा पाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके जीवन का कोई विशेष महत्व नहीं। अशिक्षित और अप्रशिक्षित होने के कारण उन्हें दिहाड़ी अधिक नहीं मिलती, जो मिलता है, उससे अपना पेट पालना ही कठिन है। जीवन के अन्य आयामों के बारे में वे कुछ नहीं सोच पाते। कहा जाता है कि अशिक्षित दलित चाहे कितनी भी मेहनत करें, केवल खाने के लिए ही पैसा कमा पाते हैं। अशिक्षा के कारण वैसे भी उनमें जागरूकता का अभाव है, उनमें दूरंदेशी नहीं है, वे जितना कमाते हैं उतना खा भी लेते हैं। विडंबना यह है कि कमरतोड़ मेहनत से कमाए रुपए को वे उचित ढंग से उपयोग में नहीं ला पाते, अधिकतर दलित लोग अपनी कमाई का दुरुपयोग करते हैं। उदाहरण देखें- "सबसे बड़ी बुराई तो यही है कि लोग जितना कमाते हैं उसका एक बड़ा हिस्सा दारूबाजी या जुए आदि में बर्बाद कर देते हैं। यद्यपि कुछ लोग इस व्यसन से मुक्त हैं किंतु अधिकांश लोग इसके शिकार हैं"[7]

स्पष्ट है कि दलित परिश्रमी तो बहुत हैं परंतु कमाए हुए धन का सदुपयोग नहीं कर पाते, अधिकतर कमाई जुए और शराब में डुबो देते हैं। शराब के नशे में धुत्त इन्हें भविष्य आदि की किसी भी प्रकार की चिंता नहीं रहती। नशे की लत के कारण भी रात-दिन कमरतोड़ मेहनत कर कमाने के बाद भी इनका जीवन स्तर ऊपर नहीं उठ पाता, हमेशा वे दूसरे का मुंह देखते हुए दीन बने रहते हैं। शराबखोरी में कमाई को खर्च करने के कारण ये लोग जीवन की मौलिक सुख-सुविधाओं को भी जुटा नहीं पाते। रोजी-रोटी का कोई निश्चित साधन तो क्या ही जुटा पाएंगे, बल्कि कई बार तो रोज़ी-रोटी के चक्कर में इनकी स्त्रियों का शारीरिक शोषण भी होता है। एक दलित स्त्री कमला अपने दुख को व्यक्त करती हुई चंदन से कहती है- "कई साल पहले की घटना है यह। मेरे मां-बाप एक सेठ के भट्टे पर काम करते थे, वही भट्टे पर एक झुग्गी में रहते थे हम। बचपन भी वहीं रेत मिट्टी खेलते बीता मेरा और वहीं पर उन भेड़ियों ने मेरी इज्जत लूटी"[8]

परंतु विडंबना यह है कि सवर्ण समाज की इन शर्मनाक करतूतों पर कोई उंगली नहीं उठाता। आजीविका कमाने के लिए कई बार दलितों को सवर्णों के यौन शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। ऐसी शर्मनाक घटनाओं से कई बार दलित मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाते हैं। कमला को तो बिना शादी-ब्याह के बच्चे को जन्म देना पड़ता है। लोगों ने जबरन उसका शारीरिक शोषण किया था जिसका परिणाम उसका बच्चा है। कमला उस घटना को भूली नहीं है और अपने रोज़गार की चर्चा करते हुए कहती है– "जीने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही था सो कोठियों में बर्तन मांजने शुरू कर दिए मैंने। पहले मैं उधर कान्तिनगर में रहती थी, वहीं पर खिलाड़ी पैदा हुआ। पहले मैंने सोचा कि यह गंदगी है और इस गंदगी को कहीं फेंक दूँ लेकिन ममता के मोह ने रोक दिया"[9]

यही कारण है कि सवर्ण जाति के लोगों द्वारा किए शारीरिक शोषण से दुखी कमला का स्त्रीत्व अपने मातृत्व के कारण विद्रोह भी नहीं कर पाता और बच्चे की रक्षा और भरण-पोषण में लग जाता है। कमला को जीवन गुज़र-बसर करने के लिए अपनी और बच्चे की भूख को मिटाने के लिए सामंत लोगों के जूठे बर्तन तक साफ करने पड़ते हैं। इसी अपमान और शोषण के कारण उसके मन में हीनता का भाव उत्पन्न होता है, और उसे शर्मनाक परिस्थितियों में अनेक प्रकार के कलंकों को सहन करना पड़ता है।

कमला और अन्य दलितों की भांति सुक्खा के पास भी आजीविका का कोई निश्चित साधन नहीं है, इसी कारण सुक्खा की आर्थिक स्थिति भी शोचनीय है, उपन्यासकार कर्दम का कथन है कि— "दिन निकलते ही मेहनत-मजदूरी के लिए निकल जाता सुक्खा और जहां जो काम मिल जाता कर लेता। रमिया भी इधर-उधर से लकड़ी आदि बीन लाती। किसी तरह अपना भी गुज़ारा करते और थोड़ा बहुत बचा कर चंदन को भिजवा देते"[10]

स्पष्ट है कि सुक्खा और उसकी पत्नी रमिया पर्याप्त मेहनत-मशक्कत करके अपना गुज़ारा करते हैं, और जो रुपए बचते हैं, उन्हें चंदन की पढ़ाई पर खर्च कर देते हैं। उन्हें चंदन के भविष्य को सजाने-सँवारने की बड़ी चिंता है। उसकी पढ़ाई के लिए उसके माता-पिता हर संभव प्रयास करते हैं। अंततः उसकी मेहनत रंग लाती है, चंदन पढ़-लिखकर कुशल इंसान और समाज सुधारक बनता है, जो दलित समाज में क्रांति लाता है। वास्तव में रोज़गार के साधन न होने के कारण ही दलित आज सवर्णों की साजिशों का शिकार होता रहता है। सवर्ण नहीं चाहते कि वे पढ़-लिखकर प्रशिक्षित होकर उनके चंगुल से मुक्त हो जाएं और अपनी मेहनत का पूरा-पूरा फल प्राप्त करें। इसी भय के कारण सवर्ण दलितों के प्रति साजिश रचते हैं। सवर्ण दलितों के हितैषी नहीं हैं, बल्कि ठाकुर, जमींदार आदि दलित मजदूरों का शोषण सदैव करना चाहते हैं। क्योंकि सवर्ण नहीं चाहते कि वे पढ़-लिखकर नौकरियां करने लगे और सवर्णों के वर्चस्व को नकार दें, और उनके खेतों, कारखानों में कार्य करना बंद कर दें। "यदि मज़दूरी करके पेट भरने वाले लोगों को मज़दूरी न मिले तो पेट भरना कठिन हो जाता है। ठाकुर–जमींदारों की सोच थी कि काम नहीं मिलेगा और भूखों मरेंगे तो होश अपने आप ठिकाने आ जायेंगे"[11]

सवर्णों का विचार है कि अगर मजदूरों को मज़दूरी न मिले तो उनका गुज़र-बसर करना कठिन हो जाएगा, और वे इनके पास आकर गिड़गिड़ाएंगे। उनकी इस विवशता का लाभ उठाकर जैसे चाहें उनका शोषण करेंगे। जब गांवों में काम न मिले तो लोग शहरों की ओर प्रस्थान करते हैं, उदाहरण देखें– "मज़दूरों–कमेरों को ठाकुर–जमींदारों द्वारा काम देना बंद किए जाने से अनेक कठिनाइयां आयी उनके सामने ।...शहरों में एक से बढ़कर एक मिल और कारखाने हैं, और न केवल काम मिलने के अवसर अधिक होते हैं मिल कारखानों में बल्कि मजदूरी भी अपेक्षाकृत अधिक होती है वहां गांव से"[12]

दलित मजदूरों के समक्ष शहरों, नगरों से गाँव में अधिक गंभीर समस्याएं हैं। सामंत अपने स्वार्थ को साधने के लिए मज़दूरों के साथ अनेक प्रकार के हथकंडे अपनाते हैं। गांवों से शहरों की ओर प्रस्थान करने वाले मजदूर जानते हैं कि गाँव देहात की तुलना में शहरों में मजदूरों को मज़दूरी मिल जाती है, काम के बदले दाम भी अधिक मिल जाता है। गांव के सामंत मजदूरों का डटकर शोषण करते हैं, परंतु बदले में उचित दाम नहीं देते, जबकि शहरों में ऐसा नहीं होता। गाँव की अपेक्षा शहर में काम भी अधिक मिलता है। गांवों से शहरों की ओर प्रस्थान करने वाले दलित मजदूर यह भी नहीं जानते कि शहर की तुलना में गांव में भेदभाव अधिक होता है, जबकि शहरों में गांवों जैसे छुआछूत भी अधिक नहीं, बल्कि कामकाज के दौरान पोशाक में जाति छिपी रहती है। स्थिति यह भी है कि जब दलित मजदूरों ने ठाकुर-साहूकारों के दुर्व्यवहार से तंग आकर शहर की ओर पलायन कर दिया तो उनके लहलहाते खेत-खलियानों पर

विशेष प्रभाव पड़ा। मज़दूरों की कमी से खेत सूखने लगे। 'छप्पर' उपन्यास के उदाहरण देखें— "उनकी सारी खेती चौपट हो गई और सदैव विविध प्रकार की फसलों से हरे भरे और लहलहाते रहने वाले खेत बंजर हो गए कुछ ही दिनों में"[13]

जब कामगार हड़ताल करते हैं तो पूंजीपतियों का भट्ठा बैठ जाता है, वर्ग संघर्ष का यह सिद्धांत खेत-खलियानों में भी काम करता है। कुछ-कुछ ऐसी ही विचारधारा दलित विमर्श के अंतर्गत काम कर रही है। 'छप्पर' उपन्यासों कहा गया है कि मज़दूरों का गाँव से शहर की ओर भाग जाना ठाकुरों-जमींदारों के लिए घातक सिद्ध हुआ, उनके पलायन करने से जमींदारों के सारे खेत-खलियान प्रभावित हुए। खेतों के बंजर होने पर उन्हें एहसास हुआ कि मज़दूरों का उनके लिए कितना महत्व है। जिनको वे पशुओं से भी घटिया समझते थे, वही उनके जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं। उनकी धन संपत्ति के लिए मज़दूरों का विशेष महत्व है। रोजगार के अभाव से बेकारी, भुखमरी बढ़ती है। कारोबार का न होना अन्य अनेक समस्याओं को जन्म देता है। जब कहीं दलितों को काम मिल जाता है तो उनके खाने-पीने का प्रबंध हो जाता है, और वे दिन अच्छे गुज़ार लेते हैं, नहीं तो कई तरह की समस्याओं से घिर जाते हैं। उपन्यासकार कर्दम का कथन है कि— "काम मिलता रहे तो गुज़ारा होता है और काम न मिले तो फांके की नौबत आते देर नहीं लगती। और यही स्थिति एक दिन सुक्खा और रमिया की भी हो गई"[14]

प्रायः बेकारी अर्थात् रोजगार के अभाव के कारण दलित दाने-दाने के मोहताज हो जाते हैं। यदि काम मिल गया तो रोटी मिल गई, नहीं तो फाकाकशी के शिकार हो जाते हैं। दलितों में रोज़गार के अभाव और बेकारी के लिए दलित साहित्यकार और दलित नेता सवर्णों को जिम्मेवार ठहराते हैं। छप्पर उपन्यास में कभी-कभी सुक्खा और रमिया को भी बेरोजगारी के कारण भुखमरी का शिकार होना पड़ता है। बेरोजगारी के कारण वे धन के अभाव से ग्रस्त हैं और अपने बेटे चंदन से मुलाकात नहीं कर पाते।

संदर्भ सूची

1. छप्पर — जय प्रकाश कर्दम — पृ. 8
2. वही — पृ. 9
3. वही — पृ. 9
4. वही — पृ. 11
5. वही — पृ. 11
6. वही — पृ. 13
7. वही — पृ. 13
8. वही — पृ. 48
9. वही — पृ. 50
10. वही — पृ. 58
11. वही — पृ. 87
12. वही — पृ. 87
13. वही — पृ. 88
14. वही — पृ. 92